



2026:AHC: 165846

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आपराधिक अपील संख्या - 1276/1983

रुपई और अन्य

.....अपीलार्थी(गण)

बनाम

राज्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता : ओ.पी. मिश्रा, प्रदीप कुमार, प्रदीप कुमार वी.

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता : ए.जी.ए.

न्यायालय संख्या - 74

माननीय न्यायमूर्ति दीपक वर्मा

1. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री विश्व दीपक मिश्रा को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।
2. वर्तमान आपराधिक अपील श्री डी.के. त्रिवेदी, चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 435 वर्ष 1982 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.04.1983 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी संख्या 1 से 3 को धारा 34 भा.द.सं. के साथ पठित धारा 304 (भाग II) और धारा 34 भा.द.सं. के साथ पठित धारा 323 के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया है और उनमें से प्रत्येक को क्रमशः पांच वर्ष और छह माह के कठोर

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



कारावास की सजा सुनाई गई है तथा अपीलार्थी संख्या 4 को सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने का निर्देश दिया गया है और यह निर्देश दिया गया है कि उसे 2,000/- रुपये की राशि के एक बंधपत्र तथा समान राशि के दो प्रतिभुओं के साथ इस वचनपत्र पर रिहा किया जाएगा कि वह बंधपत्रों के निष्पादन की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के दौरान बुलाए जाने पर उपस्थित होगा और सजा प्राप्त करेगा।

3. अभियोजन की कहानी यह है कि 14.05.1982 को शाम लगभग 5.00 बजे सूचनादाता ने सीताराम और अभियुक्तों के बीच झगड़े के संबंध में अभियुक्तों के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराई। घायल मिश्री की मृत्यु हो गई। अभियुक्तों ने मृतक मिश्री, सीताराम के भाई और सीताराम के पुत्र अवधराज पर लाठी, लात और घूंसे से हमला किया। लाठी और घूंसे की चोटों के कारण मृतक मिश्री गिर गया और बेहोश हो गया। उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया लेकिन उसकी मृत्यु हो गई। घायल मिश्री को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, महाराजगंज ले जाया गया, अगले दिन उसका चिकित्सीय परीक्षण किया गया। घटना के संबंध में अभियुक्तों के विरुद्ध एक लिखित शिकायत दर्ज कराई गई।

4. घायल का चिकित्सीय परीक्षण डॉ. ए.पी. सिंह द्वारा किया गया था। जब घायल/मृतक मिश्री का चिकित्सीय परीक्षण किया गया तब वह बेहोश था। उसे जिला अस्पताल, गोरखपुर रेफर किया गया, जहां उसी दिन दोपहर 2.45 बजे उसकी मृत्यु हो गई। विवेचना अधिकारी ने धारा 304 और 323 भा.द.सं. के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। अभियोजन पक्ष ने आठ गवाह प्रस्तुत किए, पी.डब्ल्यू.-1 श्याम बरन, पी.डब्ल्यू.-2 राधेश्याम, पी.डब्ल्यू.-3 अवधराज, पी.डब्ल्यू.-4 श्री धर्म देव सिंह (उप-निरीक्षक), पी.डब्ल्यू.-5 हेड कांस्टेबल राज जी सिंह, पी.डब्ल्यू.-6 डॉ. ए.पी. सिंह, पी.डब्ल्यू.-7 उप-निरीक्षक रामानंद ठाकुर और पी.डब्ल्यू.-8 के रूप

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



में डॉ. घनश्याम श्रीवास्तव। मिश्री और अवधराज को चोटें आईं। डॉ. ए.पी. सिंह ने मिश्री का परीक्षण किया और उन्होंने मृतक मिश्री के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

- i) बाएं कान के 3 1/2" ऊपर सिर के बाएं तरफ 1"x 1" आकार की सूजन के साथ नीलगू निशान।
- ii) भौंह के ठीक ऊपर माथे के दाहिनी ओर 2" x 1 1/2 आकार की सूजन के साथ नीलगू निशान।
- iii) दाहिने कान के ठीक नीचे गर्दन के दाहिनी ओर 2"x 1 1/2 आकार की सूजन के साथ नीलगू निशान।

सूचनादाता की लिखित रिपोर्ट दिनांक 21/22.06.1999 जो सुबह 3.45 बजे दर्ज की गई, जिसे प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया, चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-3, को कांस्टेबल क्लर्क सुरेश चंद द्वारा जी.डी. प्रदर्श क-4 में दर्ज किया गया था। घायल कालीचरण का चिकित्सीय परीक्षण 22.06.1999 को डॉ. आशु कुमार अग्रवाल द्वारा किया गया था और चोट रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया था। डॉ. ए.पी. सिंह ने 15.05.1982 को शाम 7.30 बजे अवधराज का परीक्षण किया और उसके शरीर पर निम्नलिखित साधारण चोटें पाईं:-

- i) बाएं कान के 3 1/2" ऊपर सिर के बाएं तरफ 1"x1/4" x हड्डी तक गहरा विदारित घाव।
- ii) दाहिने ऊपरी बांह के मध्य तीसरे हिस्से के बाहरी पहलू पर 1"x 3/4" का अपघर्षित नीलगू निशान। रंग नीला है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



iii) बाएं कंधे के जोड़ के शीर्ष पर 1/2" x 1/2" का खरोंच। चोट संख्या 1 और 2 लाठी से कारित की जा सकती थी और चोट संख्या 3 रगड़ से कारित की जा सकती थी।

5. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सभी साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात अपीलार्थियों को दोषसिद्ध किया है। वर्तमान अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलार्थी संख्या 1 (रुपई), अपीलार्थी संख्या 2 (राम सैवक) और अपीलार्थी संख्या 4 (राम किशुन) की मृत्यु हो गई है और उनकी ओर से अपील उपशमित हो गई है। अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि केवल अपीलार्थी संख्या 3 (राम आज्ञा) जीवित है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 40 से अधिक वर्ष बीत चुके हैं, अपीलार्थी संख्या 3 (राम आज्ञा) की आयु लगभग 70 वर्ष होने जा रही है। निर्णय और आदेश के परिशीलन पर, उनके द्वारा किए गए हमले के संबंध में अपीलार्थियों के विरुद्ध कोई विशिष्ट आरोप नहीं है। मृतक पर हमला करने के लिए सभी अभियुक्तों को सामान्य भूमिका सौंपी गई है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि घायल अवधराज ने अपीलार्थियों द्वारा किए गए हमले के संबंध में कोई साक्ष्य प्रकट नहीं किया है। अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि चूंकि अपीलार्थी संख्या 3 का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है और वर्तमान मामले के बाद, वह किसी अन्य मामले में शामिल नहीं है, इसलिए उसे प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 का लाभ दिया जाना चाहिए।

6. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वह गुण-दोष के आधार पर अपील पर जोर नहीं देना चाहते हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि घटना 40 वर्ष से अधिक समय पूर्व हुई थी और अपीलार्थियों के विरुद्ध कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है। विचारण में विलंब ने त्वरित विचारण के अधिकार से वंचित कर दिया और उन्हें प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का लाभ दिया जा सकता है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



7. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या 433 वर्ष 2001 (राम नरायन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय के प्रस्तर 14 से 26 पर भरोसा किया है। इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"14. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि वह गुण-दोष के आधार पर अपील पर जोर नहीं देना चाहते हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि घटना 33 वर्ष पूर्व हुई थी और अपीलार्थी के विरुद्ध कोई अन्य आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है। विचारण में विलंब अपीलार्थी को त्वरित विचारण के अधिकार से वंचित करता है और उसे प्रथम अपराधी का लाभ दिया जा सकता है तथा अपीलार्थी को अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 (जिसे एतदपश्चात् 1958 का अधिनियम कहा गया है) का लाभ दिया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी पहली बार अपराध करने वाला है और पहले किसी मामले में दोषसिद्ध नहीं हुआ है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यह न्यायालय है, जो अभियुक्त-अपीलार्थी को 1958 के अधिनियम की धारा 4 के लाभ पर विचार कर सकता है।

15. दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. ने अपील का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय द्वारा कोई तात्त्विक अनियमितता या अवैधता नहीं की गई है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त-अपीलार्थी को सही ढंग से दोषसिद्ध किया गया है।

16. विद्वान ए.जी.ए. आगे कहते हैं कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त-अपीलार्थी को 1958 के अधिनियम की धारा 4 में विनिर्दिष्ट कतिपय शर्तों पर प्रदान किया जा सकता है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



17. पक्षकारों द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन के पश्चात, यह न्यायालय पाता है कि वाद के गुण-दोष के अलावा, जहां तक अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता की 1958 के अधिनियम की धारा 4 के लाभ प्रदान करने की प्रार्थना का संबंध है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक स्थिति और विधि पर चर्चा करना आवश्यक है।

18. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 3 और 4 नीचे उद्धृत की गई हैं:

'3. भर्त्सना के पश्चात कतिपय अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति.-

जहां कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अंतर्गत दंडनीय अपराध या भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अंतर्गत दो वर्ष से अनधिक के कारावास या जुर्माने या दोनों से दंडनीय किसी अपराध का दोषी पाया जाता है, और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया गया है उसकी राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित वाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसा करना समीचीन है, तो उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे किसी सजा से दंडित करने या धारा 4 के अंतर्गत सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने के बजाय उचित भर्त्सना के पश्चात रिहा कर सकता है।

स्पष्टीकरण.- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि में इस धारा या धारा 4 के अंतर्गत उसके विरुद्ध दिया गया कोई पूर्व आदेश शामिल होगा।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



4. सदाचरण की परीक्षा पर कतिपय अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति.-

(1) जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया गया है उसकी यह राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, तो उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे तुरंत कोई सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभूओं के साथ या उनके बिना एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर रिहा किया जाए, ताकि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि के दौरान, जैसा न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित हो सके और सजा प्राप्त कर सके, और इस बीच शांति बनाए रखे तथा सदाचरण का पालन करे: बशर्ते कि न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर कोई निश्चित निवास या नियमित व्यवसाय है, जहां न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस अवधि के दौरान रहने की संभावना है जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है।'

19. कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1965

एस.सी. 444 में, अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 के उद्देश्य और प्रयोजन पर चर्चा करते हुए, पैरा संख्या 4 में निम्नानुसार प्रेक्षण किया है:

'4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसमें सुधार लाना अधिक है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



मोटे तौर पर यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से अधिक के अपराधियों के बीच, और मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और कम अपराध के दोषी अपराधियों के बीच अंतर करता है। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में निर्धारित शर्त के अधीन, उन्हें भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक न्यायालय को दिया गया है, 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।'

20. आगे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य, (1981) 1

एस.सी.सी. 447 : ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 643 के वाद में अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के अनुपालन के संबंध में बार और पीठ के कर्तव्य पर चर्चा करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी किया:

'जिस अपराध के लिए दोषसिद्धि दी गई है, वह धारा 360 द.प्र.सं. या किसी भी दर पर अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 द्वारा आकर्षित होगा। हमारे समक्ष सामग्री अपूर्ण है क्योंकि विचारण न्यायालय ने अपने दंडात्मक कार्यों के निर्वहन में लापरवाही बरती है। हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि किसी अभियुक्त को सजा सुनाना विवेक का एक संवेदनशील प्रयोग है, न कि अनुमान पर कार्य करने वाला कोई नियमित

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



या यांत्रिक नुस्खा। विचारण न्यायालय को परिस्थितियों में न्यायोचित सजा देने में मदद के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करनी चाहिए थी। अपराधी की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत कारक बहुत प्रासंगिक हैं, हालांकि व्यवहार में आपराधिक न्यायालयों ने शायद ही कभी अपराधी के सामाजिक परिवेश या व्यक्तिगत परिस्थितियों पर ध्यान दिया हो। भले ही धारा 360 द.प्र.सं. आकर्षित न हो, फिर भी दंडादेश देने वाले न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह एक पुनर्वासकारी झुकाव के साथ सजा पर प्रभाव डालने वाले ऐसे तथ्यों को एकत्र करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्रिय हो। वर्तमान वाद में ऐसी सामग्रियों की अनुपस्थिति ने हमें अधिवक्ता से भी बहुत कम सहायता के साथ छोड़ दिया है। वास्तव में बार के सदस्य भी इन विधायी प्रावधानों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते हैं जो किसी अपराधी के साथ इस तरह से निपटने से संबंधित हैं कि वह एक गैर-अपराधी बन जाए। हम इस पर इसलिए बल देते हैं क्योंकि दंड के परिमार्जन से संबंधित विधानों को 'लघु अधिनियम' माना गया है और, इसलिए, उन्हें अत्यंत कम महत्व का समझा गया है। यह पूर्णतः त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण है और भले ही बार से सहयोग प्राप्त न हो, फिर भी पीठ को 'अपराधी परिविक्षा अधिनियम' जैसे अधिनियमों में अंतर्निहित दंडादेश के मानवीयकरण के उद्देश्य को अवश्य पूरा करना चाहिए।

21. कि यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस माननीय न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; [2015 लॉ सूट (इला) 1343]** के वाद में, परिवीक्षा की विधि को लागू करने और उचित वादों में अभियुक्तों को लाभकारी विधान का लाभ देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



'ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त लाभकारी विधान दृष्टि से ओझल हो गया है और यहां तक कि न्यायाधीशों ने व्यावहारिक रूप से विधि के इस प्रावधान को भुला दिया है। इस प्रकार, मामले से अलग होने से पूर्व, यह न्यायालय महसूस करता है कि मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहूंगा, यदि विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों के लिए चेतावनी का एक शब्द नहीं लिखा जाता है। इस न्यायालय के महानिबंधक को इस निर्णय की प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को प्रसारित करने का निर्देश दिया जाता है, जो बदले में अपने अधीन कार्यरत सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच इस आदेश की प्रति का प्रसार सुनिश्चित करेंगे और इस निर्णय का सख्त अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। राज्य के जिला न्यायाधीशों को भी ऐसे मामलों से निपटने वाले सभी न्यायालयों, अर्थात् विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों से हर महीने रिपोर्ट मांगने का निर्देश दिया जाता है और यह बताने के लिए कहा जाता है कि कितने मामलों में अभियुक्तों को उपरोक्त प्रावधानों का लाभ दिया गया है। जिला न्यायाधीशों को प्रत्येक मासिक बैठक में व्यक्तिगत रूप से ऐसे मामलों की निगरानी करने का भी निर्देश दिया जाता है। संबंधित जिला न्यायाधीश महानिबंधक को मासिक विवरण भेजेंगे कि विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने कितने वादों में अभियुक्तों को उपरोक्त लाभकारी विधान का लाभ दिया है। तत्काल अनुपालन के लिए इस आदेश की एक प्रति महानिबंधक के समक्ष रखी जाए।'

22. आगे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह

आनंद; (2004) 7 एस.सी.सी. 659 में अपीलार्थियों को अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ प्रदान किया है, और निम्नानुसार टिप्पणई किया है:

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



'अभियुक्त की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दुर्घटना वर्ष 1990 की है। पक्षकार शिक्षित हैं और पड़ोसी हैं। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। दुर्घटना दस वर्ष से अधिक पुरानी है। जल निकासी का दावा करने के तुच्छ मुद्दे पर पड़ोसियों के बीच विवाद था। दुर्घटना गुस्से में हुई। सभी पक्षकार शिक्षित हैं और दूर के रिश्तेदार भी हैं। दुर्घटना ऐसी नहीं है कि अभियुक्त को कारावास की सजा भुगतने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है, जिसमें अभियुक्तों को सदाचरण के लिए एक वर्ष का बंधपत्र निष्पादित करने का निर्देश देकर उन्हें परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।'

23. कि सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3534

में अभियुक्त/अपीलार्थियों को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के बिंदु पर आते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

'विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता, पीड़िता पर अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण रखना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ प्रावधानों में सन्निहित परिसीमा के अधीन है और "कर सकता है" शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र और वाद की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में अपराधी को रिहा करना है या नहीं, इसका विवेक न्यायालय में निहित है। अपराधी परिवीक्षा

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियां न्यायालय में तब निहित होती हैं जब कोई व्यक्ति किए गए अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी पाते समय किया जा सकता है और यदि न्यायालय समझता है कि मामले की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय द्वारा इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण के चरण पर भी किया जा सकता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील पर सुनवाई करते समय इस न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है।'

24. कि यह भी ध्यान देने योग्य है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. पृष्ठ 660** के वाद में, निम्नानुसार टिप्पणी किया:

'20-.....रतन लाल बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 444 में न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत के लिए बोलते हुए, इस प्रकार राय दी:-

"यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसमें सुधार लाना अधिक है। मोटे तौर पर यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से अधिक के अपराधियों के बीच, और मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और कम अपराध के दोषी अपराधियों के बीच अंतर करता है। जबकि

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन, उन्हें भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक न्यायालय को दिया गया है, 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।”

25. कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 वहां लागू होती है जहां कोई व्यक्ति कोई ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है, जहां सजा न तो आजीवन कारावास है और न ही मृत्यु दंड। न्यायालय धारा में उल्लिखित बंधपत्र प्रस्तुत करने पर ऐसे अभियुक्त को सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर सकता है। इस धारा के प्रावधानों को लागू करने में न्यायालय को अपने विवेक का प्रयोग करने से पूर्व वाद की परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र और अपराध की प्रकृति पर भी विचार करने की आवश्यकता होती है।

26. 1958 के अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों के परिशीलन से इस प्रकार स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 अपराधियों की श्रेणी के बीच कोई अंतर पैदा नहीं करती है और उक्त धारा का प्रावधान किसी भी ऐसे वाद में लागू किया जा सकता है, जहां अपराधी कोई ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। संयोगवश माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुछ अपवाद इंगित किए गए हैं, जैसे कि **श्रीमती देवकी बनाम हरियाणा राज्य; 1979 (3) एस.सी.सी. 760** के वाद में जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ किसी ऐसे अपराधी

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



को नहीं दिया जा सकता जो एक किशोर लड़की का अपहरण करने और उसे आपराधिक उद्देश्य के साथ यौन समर्पण के लिए मजबूर करने का दोषी पाया गया हो। इसी प्रकार 1980 (4) एस.सी.सी. 669 संदर्भ में: महाराष्ट्र राज्य बनाम नटवर लाल दामोदर दास सोनी में प्रतिवेदित वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सोने की तस्करी के दोषी पाए गए अभियुक्त को 1958 के अधिनियम का लाभ देने से इनकार कर दिया।"

8. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. श्री विश्व दीपक मिश्रा इस तथ्य का विवाद नहीं करते हैं कि अभियुक्त-अपीलार्थी पहली बार अपराध करने वाले हैं और पहले किसी अन्य वाद में दोषसिद्ध नहीं हुए थे। वह यह भी प्रस्तुत करते हैं कि धारा 361 द.प्र.सं. के अभिव्यक्त प्रावधानों के दृष्टिगत, तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति, अभियुक्त-अपीलार्थियों के चरित्र और विशेष रूप से घटना की तिथि से बीत चुके समय की अवधि पर विचार करते हुए, इस वाद में 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ दिया जा सकता है।

9. मैंने अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है।

10. उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, जहां तक यह अपीलार्थी राम आज्ञा की दोषसिद्धि से संबंधित है, उसे बरकरार रखा जाता है लेकिन सजा को संशोधित किया जाता है। राम आज्ञा को जेल भेजने के बजाय, उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाता है और उसे संबंधित जिला परिवीक्षा अधिकारी के समक्ष अपने व्यक्तिगत बंधपत्र के साथ 20,000/- रुपये प्रत्येक के दो प्रतिभू और इस आशय का एक वचनपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है कि वह आज से दो वर्ष की अवधि के दौरान शांति और सदाचरण बनाए रखेगा।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



उक्त बंधपत्र राम आज्ञा द्वारा इस निर्णय की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर दाखिल किए जाने हैं।

11. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन के स्थिति में, राम आज्ञा को अभिरक्षा में लिया जाएगा और उसे दी गई सजा भुगतनी होगी।

12. उपरोक्त संशोधन के साथ, वर्तमान आपराधिक अपील **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

13. अनुपालन के लिए आदेश की एक प्रमाणित प्रति संबंधित न्यायालय को भी भेजी जाए।

14. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आवश्यक अनुपालन के लिए इस आदेश को संबंधित न्यायालय को प्रेषित करे।

15. अवर न्यायालय का अभिलेख, यदि कोई हो, भी संबंधित जिला न्यायालय को वापस भेजा जाए।

7 अगस्त, 2026

एस.के.डी.

(न्यायमूर्ति दीपक वर्मा)

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”